अम्मा

"तुमने अम्मा को बता दिया कि आज हम बाहर खाना खाकर आएंगे?" पार्थ ने संयोगिता से संदेहास्पद तरीके से पूछा। पार्थ की प्रश्नपूर्ण निगाहें, होंठों पर विचित्र मंद मुस्कान के साथ गर्दन हिलाकर इस प्रश्न का पूछना इस बात की ओर इशारा था जैसे उसे संयोगिता की ओर से आने वाले उत्तर का पहले से अनुमान हो कि तभी संयोगिता ने उत्तर दिया, "अजी अम्मा को क्या बताना, क्या हम पति पत्नी बाहर खाना खाने भी नहीं जा सकते?" अम्मा कोई और नहीं बल्कि पार्थ की माँ थी। अपने बेटे पार्थ को जीवन का यथार्थ दर्शन करवाने वाली अम्मा की नज़रे समय के साथ आज कुछ धुँधली सी हो गई थी। उम्र के इस पढ़ाव का अनुभव अम्मा को अब मिल रहा था। अम्मा का वास्तविक नाम सरिता था। अम्मा के पति 'केशव बाबू' का देहावसान हुए अभी कोई दो वर्ष ही व्यतीत हुआ था। पार्थ उनकी इकलौती सन्तान थी। पार्थ के लालन पालन में केशव बाबू और सरिता ने कोई कसर नहीं छोड़ी थी। मेहनत मजदूरी करने वाले केशव बाबू की आय से दो जून (वक़्त) की रोटी पकाना भी आसान न होता था और उस पर पार्थ भी दिन प्रतिदिन बढ़ता जा रहा था ऐसे में उसकी शिक्षा का खर्चा कैसे और कहाँ से वहन होगा ये चिंता मन ही मन केशव बाबू और सरिता को खाए जाती थी। अतः सरिता भी अपनी दिनचर्या से थोड़ा समय निकाल कर लोगों के घरेलू काम काज करने लगी जिससे प्राप्त चंद रुपयों से पार्थ के उज्जवल भविष्य की नींव रखी जाने लगी। पार्थ जो हठ करता केशव बाबू और सरिता देरी से ही सही लेकिन उसकी ज़िद पूरी अवश्य करते थे। उसकी जिद और बेहतर भविष्य के आगे उन्होंने अपनी आर्थिक तंगी को कभी भी आने नहीं दिया। केशव बाबू, जिनको पार्थ बाबूजी बुलाता था उनके सामने तक पार्थ का ब्याह नहीं हुआ था किन्तु पार्थ की नौकरी अवश्य लग गई थी। नौकरी छोटी मोटी अवश्य थी किन्तु घर की गुजर बसर चल रही थी कि बाबूजी का देहान्त हो गया। अब अम्मा के जीने का सहारा पार्थ ही था। बुढ़ापे की देहलीज़ पर अम्मा के बढ़ते कदम के अनुभवों को उन्होंने शायद सपने में भी नहीं सोचा होगा और सोचती भी कैसे? जिस इकलौती संतान को पालने में अम्मा बाबूजी ने अपना सर्वस्व समर्पित कर दिया था उससे भला साथ देने जैसी छोटी सी उम्मीद करना भला कौन सा गुनाह था?

पार्थ की तरक्की बाबूजी के देहान्त के छः महीनों के भीतर हो चुकी थी और अगले छः महीनों में पार्थ ने नौकरी बदल दी थी जिससे उसका पद और वेतन दोनों में खासा इज़ाफ़ा हुआ था। वहीँ उसकी मुलाक़ात संयोगिता से हुई थी। संयोगिता से पहली नज़र में ही पार्थ को उससे आकर्षण हो रहा था। होता भी क्यों न, मृग जैसे नयन, गुलाबी

अधर, लालिमायुक्त कपोल, और घुँघराले बाल उसकी सुंदरता का स्वतः बखान कर रहे थे। साथ ही उसके पाश्चात्य संस्कृति वाले वस्त्र साधारण जीवनशैली वाले पार्थ को आकर्षित कर रहे थे। लेकिन मृगनयनी वाली उस चंचला को भी पार्थ की ओर मानो कोई आकर्षण सा हो रहा था। समय बीत रहा था कि आकर्षण प्रेम में परिवर्तित होने लगा था किन्तु चिंता का विषय यह था कि संयोगिता और पार्थ दोनों की जाति अलग अलग थी। उन्हें संदेह यह था कि अम्मा शादी के लिए तैयार होंगी भी अथवा नहीं। लेकिन अम्मा ने पार्थ की ख़ुशी के लिए रिश्ते को हाँ कर दी। शादी को अभी एक वर्ष भी नहीं हुआ था कि पार्थ उस चंचला संयोगिता के प्रेमपाश में इस तरह डूब गया था कि उसे अब जैसे अम्मा की कोई चिन्ता ही नहीं थी। पार्थ से प्रतिपल भोजन का पूछने वाली अम्मा ने सुबह से कुछ खाया भी है या नहीं ये भी पूछने का अब जैसे पार्थ को समय न था। महीनों गुज़र जाते थे पर शायद ही कभी अम्मा का हालचाल लेने चंद पल भी पार्थ ने उनके पास गुज़ारा हो। और गुज़ारता भी कैसे, आखिर आधा सा दिन उसकी नौकरी में निकल जाता था और शेष समय में पार्थ को अकेला देख संयोगिता अपने किसी न किसी काम में लगा देती। संयोगिता को बिल्कुल पसंद नहीं था कि पार्थ अम्मा के पास थोड़ी देर भी समय व्यतीत करे इसलिए कोई न कोई बहाना निकालकर वो पार्थ को किसी न किसी काम में लगा देती थी।

सो आज वो दोनों बाहर खाना खाने गए हुए थे। घर में अम्मा बिलकुल अकेली थी कि एकाएक उन्हें ज़ोरो की भूख लगी। अम्मा पाकगृह की तरह इस झूठी उम्मीद से चल दी कि संयोगिता ने कुछ बनाया होगा। रसोई में जाकर देखने पर जो हाथ में था, वह थी, एक तो थी घोर निराशा और दूसरा भूख। उनके विचारों की तीव्र गति क्षुधा की इस धधकती अग्नि को और तीव्र कर रही थी। जिस औलाद की परवरिश में अपने सपनों का गला घोंटा था अम्मा ने, आज उसी औलाद ने अम्मा को मौत के करीब ला दिया था। लेकिन वक़्त क्या दिन न दिखा दे, ये सोच कर, कर्मफल मानकर उन्होंने मन को एक झूठा दिलासा देकर उस परिस्तिथि को स्वीकारते हुए, पानी पीकर अपनी भूख को तृप्त करने की निरर्थक चेष्टा की। आज अम्मा को वो दिन स्मरण हो रहे थे जब बाबूजी मेहनत मजदूरी करके ही सही, अम्मा को कभी भूखा नहीं रहने देते थे और वो बेटा जिसके लिए उन्होंने 'उनका आज' अब एक याद बना दिया था, वह समर्थ होकर भी कितना दीन दरिद्र सा जान पड़ रहा है। और ऐसा पहली बार नहीं था जब संयोगिता और पार्थ ने ऐसा किया हो। अतः आज अम्मा ने सोच लिया कि वो अपने मर्म, अपनी वेदना को शब्दों में उकेरेंगी और इसी के साथ उन्होंने मन के विचारों को लिखना शुरू किया। समय के

साथ कमज़ोर होती नेत्र ज्योति, और काँपते हाथों ने जितना साथ दिया अम्मा ने उतना लिखा।

एक रोज़ पार्थ को अपने कार्यालय की ओर से एक सप्ताह की विदेश यात्रा करने का मौका मिला। शर्त यह थी कि कार्यालय कोई भी दो व्यक्तियों का खर्च वहन करेगा, उससे अधिक के लिए पार्थ को अपनी आय से वहन करना था। अतः उसके मन में एक विचार आ रहा था कि अम्मा के लिए क्या करें? घर पहुँच कर उसने ये पूरा वाक्या संयोगिता के साथ सांझा किया। संयोगिता पार्थ के उस निर्णय से नाखुश थी जिसमें वो अम्मा को भी अपने खर्च पर ले जाने के पक्ष में था, क्योंकि उस यात्रा में एक व्यक्ति के लिए होने वाला खर्च पार्थ के लगभग दो माह का मेहनताना था। बजते बर्तनों की खनक काफी दूर तक स्पष्ट होती है अतः अम्मा को भी पता चल गया था। कि एकाएक पार्थ ने अम्मा के कक्ष के दरवाज़े पर दस्तक दी। पुत्र के आगमन ने उन पथराई आँखों को नम कर दिया था। पार्थ अम्मा से बोला, "अम्मा मुझे मेरे कार्यालय की ओर से एक सप्ताह की विदेश यात्रा का पुरूस्कार मिला है।" अम्मा ने दोनों हाथ थोड़ा उठाकर पार्थ को आशीर्वाद का संकेत दिया। पार्थ आगे बोला, "क्या अम्मा आप हमारे साथ चलोगी?" संयोगिता और पार्थ के उस विवाद में ध्वनि का तारत्व इतना अधिक था कि शायद तीन चार घर दूर तक वाक्य स्पष्ट सुना जा सकता था, ऐसे में अम्मा तो उसी घर के एक कक्ष में रहती थी। ऐसे में उन्होंने पार्थ को उत्तर दिया, "लल्ला, मेरी उमर तुझे घूमने फिरने वाली लगती है? तू बहु के साथ हो आ।" जैसा आप कहो, बोल कर पार्थ उस कक्ष से चला गया। घूमने के जोश में, दोनों अम्मा के प्रति अपनी ज़िम्मेदारियाँ सिरे से भूल गए। विदेश यात्रा से अच्छे लम्हों और यादों को सहेज जब दोनों वापस आए और उन्होंने घर का दरवाज़ा खटखटाया तो अंदर की खामोशी ने उन्हें अंदर आने की अस्वीकृति दी। पार्थ, अम्मा अम्मा करता रहा, लेकिन अम्मा "लल्ला आई" कहने की मनोदशा में नहीं जान पड़ रही थी। अचानक से पार्थ के मन में बुरे विचारों की जैसे बाढ़ आ गई, और उसने यथासंभव बल से उस दरवाज़े को तोड़ दिया, और घर में प्रवेश लिया। अम्मा वहां अचेत थी। अम्मा को चिकित्सक के पास ले जाने पर पता चला की अम्मा की मृत्यु दो दिन पूर्व ही हो गई थी। आंतें मारे भूख के सिंकुड़ गई थी और गहन चिंतन से उनके मश्तिष्क में न्यूरॉन तबाह हुए थे और आघात हुआ था, जो मौत का कारण बना था।

अम्मा अब जा चुकी थी। पार्थ अपने कुकर्मों का परिणाम देख खुद को बेबस महसूस कर रहा था। "भला मौत पर किसका बस" वाक्य ने सबका ध्यान द्वार पर आए एक आगंतुक शोकाकुल की ओर गया। काला कोट पहना, हाथ में फाइल दबाया आखिर ये शख्स कोई वकील सा जान पड़ रहा था। किसी के कुछ पूछने से पहले ही उस आगंतुक ने बताया कि वह एक अधिवक्ता है और उसकी अम्मा की वसीयत लेकर आया है। सब स्तब्ध थे कि आखिर एक कंगाल वसीयत किस आधार पर करके गया होगा। पार्थ ने अधिवक्ता साहब को अंदर लेकर अम्मा की वसीयत पढ़ने का अनुरोध किया।

अधिवक्ता ने पढ़ना शुरू किया,

"मैं सरिता देवी (आवेदिका), पत्नी स्वर्गीय श्री केशव बाबू, निवासी पान वाली गली, आगरा, अपने पूरे होश-ओ-हवास में बिना किसी मादक पदार्थ या द्रव्य का सेवन करे वसीयत क्रमानुसार लिख रही हूँ:

1) यह घर केशव बाबू और आवेदिका की मेहनत का प्रतिफल है और इसका स्वामित्व आवेदिका के पास ही है, अतः इस घर को आवेदिका अनाथ बुज़ुर्गों की छत हेतु सरकार को देती है, जहाँ सरकार किसी भी समाजसेवी संस्था के माध्यम से ऐसे बुज़ुर्गों को शरण दे सकती हैं जिनकी नाकारा औलादें उनको बोझ समझती हो।"

पहला निर्देश सुनते ही पार्थ ये समझ गया कि उसके पाप उसका पीछा कई जन्मों तक नहीं छोड़ने वाले।

वकील ने आगे पढ़ा,

2) आवेदिका के कक्ष में एक बक्से में कुछ स्वर्ण और रजत के आभूषण हैं जो केशव बाबू की माँ से आवेदिका को प्राप्त हुए थे, उसे बेचकर प्राप्त धन को एक खाता में रखा जाए जिसका स्वामित्व भी सरकार को इस परिप्रेक्ष्य में दिया जाए कि जब तक, जितने दिन, संभव हो उस पैसों से उन्ही अनाथ बुज़ुर्गों की क्षुधा तृप्ति की जाए।"

संयोगिता अभी भी भावशून्य थी लेकिन पार्थ गले तक एक अजीब से दर्द से भर चुका था, उसका ह्रदय भी स्पंदन सहजता से नहीं कर पा रहा था।

वकील ने आगे पढ़ा,

3) आवेदिका के मृत शरीर से उपयोग में आने वाले अंगों को अनुसंधान या पुनरुपयोग हेतु निकाल लिए जाए और उसकी चिता को अग्नि उसके पुत्र या पुत्रवधु द्वारा न दी जाए।"

संयोगिता यह सुनकर स्तब्ध हुई कि अम्मा ने पार्थ को अलग कैसे कर दिया अपनी वसीयत से कि वकील ने आख़िरी क्रम को भी पढ़ दिया,

4) आवेदिका की पुत्रवधु संयोगिता और पुत्र के लिए आवेदिका की एक कॉपी जो उसके कक्ष में मेज पर रखी हुई है, उसमें आवेदिका का जीवन दर्शन है। वक़्त मिलने पर पढ़ लेना।

उपरोक्त समस्त क्रमानुसार वर्णित वसीयत को मेरी मृत्यु वाले दिन अस्तित्व में लाने के लिए आवेदिका अधिवक्ता श्री परमेश्वर सिंह जी को नियुक्त करती है, साथ ही यह भी स्पष्ट करती है कि इस वसीयत के लिए आये खर्च को उन्होंने अपनी और केशव बाबू की संयुक्त जमापूंजी से वहन किया है।"

आखिरी निर्देश को सुनकर सब अभी इसी सोच में थे कि कॉपी का क्या रहस्य है कि अचानक बताये स्थान से उस कॉपी को लाकर पार्थ ने पढ़ना शुरू किया:

"मेरे बच्चों, अम्मा का आशीर्वाद!

हालाँकि तुम अब इस आशीर्वाद के मोहताज नहीं हो। लेकिन तुम्हें शायद इस बात का एहसास नहीं होगा कि कैसे तुम्हारे लालन पालन में तुम्हारे अम्मा बाबूजी ने वो दिन भी गुजर बसर किये हैं, जिसके न करने से तुम्हारा आज आज जैसा न होता। शादी करने का ये मतलब हरगिज़ नहीं होता कि बच्चा अपने माँ-बाप के प्रति अपनी ज़िम्मेदारियों से विमुख हो जाए और तुमसे तो केवल प्रेम अपेक्षित था।

संयोगिता, तुम कहीं भी गलत नहीं हो। जिस बेटे को 27-28 वर्ष अपने प्यार से पाला, अपनी मेहनत की कमाई से आज इस क़ाबिल बनाया, जब वही हमारा नहीं रहा तो तुम तो कुछ वर्षों से हमसे जुड़ी थी। ये भी हमारे ही संस्कार थे कि कम से कम पार्थ अपनी पत्नी के लिए तो संवेदना रखता है, चाहें उसका अपनी अम्मा के प्रति प्रेम अब मर चुका है। बस तुम्हे अपना एक जीवन दर्शन देकर यही विराम कर रही हूँ, कि तुम दोनों कभी

अपने बच्चे को जन्म देने का न सोचना क्योंकि मैं नहीं चाहती कि मेरी बहु का जब यौवन ढल जाए, जब उसके चेहरे की लालिमा फीकी हो जाए, इस आकर्षक शरीर का गर्द चूर हो जाए, आँखों की ज्योति मंद पड़ जाए, और हाथ पैरों में जान कम रह जाए तो उम्र के पार्श्व प्रभाव में उसकी वही औलाद उसके लिए भावशून्य होकर उसे एकांत में छोड़कर चली जाए।

औलाद से दर्द भी औलाद वालों को मिलते हैं, बेऔलाद कम से कम इस दर्द के अनुभव से तो वंचित रहते हैं।

तुम्हारी अम्मा...."

संयोगिता उस दर्द का अब जीवंत अनुभव कर पा रही थी। पार्थ और संयोगिता दोनों की आँखों से अश्रुधारा अविरत प्रवाह हो रही थी। अन्य सभी श्रोतागण की भी आँखें नम थी। अम्मा का दर्द, जो उनके दिल पर बोझ था, वह उसे सबके साथ सांझा करके परब्रह्म में विलीन हो गई थी...

लेखक

मयंक सक्सैना 'हनी'

पुरानी विजय नगर कॉलोनी,

आगरा, उत्तर प्रदेश – 282004

(दिनांक 25/अक्टूबर/2021 को लिखी गई एक कहानी)